भारतीय राजनीति में जाति का प्रभाव: एक ऐतिहासिक अध्ययन

Brahmanand Kirad

1. प्रस्तावना

भारत जैसे बहुसांस्कृतिक, बहुभाषिक और बहुजातीय राष्ट्र में सामाजिक संरचना अत्यंत जटिल रही है, जिसमें जाति एक केंद्रीय तत्व के रूप में सदियों से विद्यमान रही है। जाति व्यवस्था मूलतः एक सामाजिक-धार्मिक संस्था थी, जो जन्म आधारित श्रेणीकरण और सामाजिक उत्तरदायित्वों पर आधारित थी। किंतु औपनिवेशिक शासन, सामाजिक सुधार आंदोलनों और लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास के साथ-साथ यह व्यवस्था धीरे-धीरे सामाजिक दायरे से निकलकर राजनीतिक विमर्श और व्यवहार का भी अभिन्न अंग बन गई। भारत के स्वतंत्रता प्राप्त करने के साथ ही लोकतंत्र को देश की शासन व्यवस्था का आधार बनाया गया। भारतीय संविधान ने समानता, सामाजिक न्याय और अवसरों की समानता को मूलभूत अधिकारों के रूप में स्थापित किया। संविधान निर्माताओं ने जाति प्रथा के शोषणकारी पक्षों को समाप्त करने हेतु अस्पृश्यता को अपराध घोषित किया और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व देने के लिए आरक्षण व्यवस्था लागू की। परंतु इसी व्यवस्था ने सामाजिक सुधार के लक्ष्य के साथ-साथ जातीय पहचान को राजनीतिक शक्ति में भी रूपांतरित कर दिया। स्वतंत्रता के बाद की राजनीति में प्रारंभ में कांग्रेस जैसी दलों ने जाति की भूमिका को गौण रखने का प्रयास किया, परंतु जैसे-जैसे लोकतांत्रिक चेतना ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँची और हाशिए पर खड़ी जातियों में राजनीतिक जागरूकता आई, जाति एक राजनीतिक उपकरण के रूप में सामने आई। राजनीतिक दलों ने समझा कि चुनाव जीतने के लिए जातीय पहचान और समूहों को एकत्र करना एक प्रभावी रणनीति है। इसने भारत में "वोट बैंक" की राजनीति को जन्म दिया, जहाँ मतदाताओं को उनके जातीय समूहों के आधार पर संबोधित किया जाने लगा। विशेष रूप से 1990 के दशक में जब मंडल आयोग की सिफारिशों के तहत पिछड़े वर्गों को सरकारी नौकरियों और शिक्षण संस्थानों में आरक्षण प्रदान किया गया, तब भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका निर्णायक हो गई। यह निर्णय न केवल प्रशासनिक ढांचे को प्रभावित करने वाला था, बल्कि इसने एक नई सामाजिक-राजनीतिक चेतना को जन्म दिया जिसमें जातीय समूहों ने अपने अधिकारों, पहचान और प्रतिनिधित्व के लिए राजनीति में सक्रिय भागीदारी शुरू की। इसने देश में अनेक जाति आधारित क्षेत्रीय दलों के उदय को प्रेरित किया, जिनमें बहुजन समाज पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, समाजवादी पार्टी जैसे दल प्रमुख उदाहरण हैं।

आज की भारतीय राजनीति में जाति केवल एक सामाजिक पहचान नहीं रह गई है, बल्कि यह सत्ता की कुंजी बन चुकी है। राजनीतिक दल मतदाताओं की जातीय संरचना का विश्लेषण कर अपने प्रत्याशियों का चयन करते हैं, क्षेत्रीय गठबंधनों का निर्माण करते हैं और नीतियों को जातीय हितों के अनुरूप ढालते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक प्रक्रिया में जाति की भूमिका केवल पारंपरिक विचारधाराओं या समुदाय विशेष तक सीमित नहीं है, बल्कि यह संपूर्ण लोकतांत्रिक प्रक्रिया को प्रभावित करती है — चुनावी रणनीति से लेकर नीतिगत निर्णयों तक। जातिगत राजनीति का यह उभार लोकतंत्र के दोहरे स्वरूप को सामने लाता है — एक ओर यह हाशिए पर पड़े तबकों को सशक्तिकरण की राह देता है, वहीं दूसरी ओर यह राष्ट्रहित और व्यापक सामाजिक सरोकारों को जातीय आग्रहों के अधीन कर देता है। भारत जैसे देश में जहाँ सामाजिक विविधता अत्यंत व्यापक है, वहाँ यह आवश्यक है कि जातीय अस्मिता और राजनीतिक सहभागिता के बीच संतुलन स्थापित किया जाए।

यह शोध पत्र भारतीय राजनीति में जाति के ऐतिहासिक विकास, वर्तमान परिप्रेक्ष्य और इसके लोकतांत्रिक प्रक्रिया पर पड़ने वाले प्रभावों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। साथ ही, यह यह भी समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार जातीय राजनीति के उभार ने न केवल समाज की धारणाओं को बदला है, बल्कि सत्ता के चरित्र को भी गहराई से प्रभावित किया है।

2. शोध उद्देश्य

जाति और राजनीति के संबंधों को लेकर यह अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों को केंद्र में रखकर किया गया है:

1. **भारतीय राजनीति में जाति के ऐतिहासिक और सामाजिक आधार को समझना:** यह उद्देश्य जाति व्यवस्था की उत्पत्ति, उसका सामाजिक ढांचा, और उसके राजनीतिक रूपांतरण को समझने से संबंधित है। इसमें यह देखा जाएगा कि कैसे पारंपरिक जातीय संरचना स्वतंत्र भारत के लोकतंत्र में नए राजनीतिक अर्थों के साथ उभरी और मजबूत हुई।
2. **जातीय पहचान और राजनीतिक सहभागिता के बीच के संबंध का विश्लेषण करना:** अध्ययन यह जानने का प्रयास करेगा कि किस प्रकार जातीय पहचान, राजनीतिक चेतना और संगठनात्मक गतिविधियों को जन्म देती है। इसमें यह भी देखा जाएगा कि जातीय समुदायों के भीतर राजनीतिक जागरूकता कैसे निर्मित होती है और यह कैसे राजनीतिक भागीदारी को प्रभावित करती है।
3. **चुनावी राजनीति में जाति आधारित रणनीतियों और मतदाता व्यवहार की समीक्षा करना:** यह उद्देश्य चुनावी अभियानों, प्रत्याशी चयन, और दलगत घोषणापत्रों में जातिगत समीकरणों के उपयोग तथा मतदाताओं की जाति आधारित निष्ठा का मूल्यांकन करता है। इसके अंतर्गत विभिन्न चुनावों में वोटिंग पैटर्न और सामाजिक संरचना के आपसी संबंधों का अध्ययन किया जाएगा।
4. **विभिन्न राज्यों में जाति की राजनीतिक भूमिका की तुलनात्मक व्याख्या करना:** चूँकि भारत एक विविध राज्य संरचना वाला देश है, प्रत्येक राज्य में जाति और राजनीति का स्वरूप भिन्न हो सकता है। अतः यह उद्देश्य उत्तर प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और कर्नाटक जैसे राज्यों के जाति-राजनीति के स्वरूप की तुलना कर उनके अंतरों और समानताओं की पहचान करना है।
5. **जाति आधारित राजनीति के सामाजिक प्रभाव और लोकतांत्रिक मूल्यों पर प्रभाव का मूल्यांकन करना:** इस उद्देश्य के अंतर्गत यह विश्लेषण किया जाएगा कि जाति आधारित राजनीति किस प्रकार सामाजिक समरसता, धर्मनिरपेक्षता, समानता और राजनीतिक जवाबदेही जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रभावित करती है। साथ ही यह भी समझने का प्रयास किया जाएगा कि जातिगत राजनीति किन परिस्थितियों में सशक्तिकरण का माध्यम बनती है और कब विभाजनकारी ताकत में परिवर्तित हो जाती है।

3. शोध पद्धति

इस अध्ययन के लिए गुणात्मक शोध पद्धति (Qualitative Research Methodology) को चुना गया है, जो समाजशास्त्रीय और राजनीतिक दृष्टिकोणों को केंद्र में रखकर विश्लेषण करती है। शोध का उद्देश्य अनुभवजन्य तथ्यों से अधिक व्याख्यात्मक (interpretative) और संदर्भ-आधारित समझ विकसित करना है। निम्नलिखित शोध तकनीकों और स्रोतों का प्रयोग किया गया:

1. **माध्यमिक स्रोतों का विश्लेषण:** अध्ययन में व्यापक रूप से माध्यमिक स्रोतों जैसे कि प्रामाणिक शोध-पत्र, राजनीतिक समाजशास्त्र से संबंधित पुस्तकें, चुनाव आयोग की रिपोर्टें, अखबारों की विश्लेषणात्मक रिपोर्ट्स, राजनीतिक घोषणापत्रों और केस स्टडीज का उपयोग किया गया है।
2. **तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis):** उत्तर प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और कर्नाटक जैसे राज्यों की जातीय राजनीति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इन राज्यों में जातियों की संरचना, उनके राजनीतिक प्रतिनिधित्व और दलगत रणनीतियों के बीच अंतर और साम्यता का आकलन किया गया है।
3. **पाठ विश्लेषण (Content Analysis):** प्रमुख राजनीतिक दलों के घोषणापत्रों, नेताओं के चुनावी भाषणों, और मीडिया में प्रस्तुत साक्षात्कारों का पाठ विश्लेषण किया गया है ताकि यह समझा जा सके कि किस प्रकार जाति को राजनीतिक संवाद में प्रयुक्त किया जाता है।
4. **चुनावी आँकड़ों का परीक्षण:** राष्ट्रीय चुनाव आयोग, सेंटर फॉर स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसाइटीज़ (CSDS) और अन्य प्रामाणिक संस्थाओं द्वारा उपलब्ध कराए गए मतदान संबंधी आंकड़ों के आधार पर विभिन्न जातीय समूहों के मतदान व्यवहार का अध्ययन किया गया।
5. **विमर्श आधारित विश्लेषण (Discourse Analysis):** जाति पर केंद्रित प्रमुख सामाजिक और राजनीतिक विमर्शों (जैसे मंडल आयोग, आरक्षण आंदोलन, दलित राजनीति आदि) की व्याख्या की गई है ताकि यह समझा जा सके कि जातिगत मुद्दे किस तरह राजनीतिक विमर्श का हिस्सा बने और उनका सामाजिक प्रभाव क्या रहा।

इस शोध पद्धति का उद्देश्य केवल घटनाओं का वर्णन करना नहीं, बल्कि जाति और राजनीति के मध्य संबंधों की जटिलता को समझना और उसका वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करना है। शोध निष्कर्षों का उद्देश्य भारतीय लोकतंत्र की प्रक्रियाओं में जाति की भूमिका की गहरी और वस्तुनिष्ठ समझ प्रदान करना है।

4. भारतीय राजनीति में जाति का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारत में जाति व्यवस्था की जड़ें अत्यंत प्राचीन हैं, जो मूलतः सामाजिक कर्तव्यों और पेशागत वर्गीकरण पर आधारित थीं। किंतु समय के साथ इस प्रणाली ने एक कठोर सामाजिक श्रेणीकरण का रूप ले लिया जिसमें सामाजिक गतिशीलता लगभग समाप्त हो गई। मध्यकालीन भारत में जाति की भूमिका मुख्यतः सामाजिक और धार्मिक सीमाओं तक सीमित थी, परंतु ब्रिटिश शासन के आगमन के बाद इसकी प्रकृति में निर्णायक बदलाव आया। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान जातियों को पहली बार प्रशासनिक और जनगणनात्मक वर्गों में विभाजित किया गया। 1871 में हुई पहली जनगणना से लेकर 1931 की जनगणना तक, ब्रिटिश शासकों ने भारतीय समाज की जातिगत संरचना को सांख्यिकीय रूप में वर्गीकृत करना आरंभ किया, जिसके सामाजिक परिणाम दूरगामी सिद्ध हुए। इस वर्गीकरण ने जातियों की पहचान को ठोस रूप दिया और उनमें सामूहिकता तथा अधिकारबोध की भावना विकसित की। इसके फलस्वरूप अनेक जातियाँ राजनीतिक रूप से संगठित होने लगीं और अपने अधिकारों के लिए संगठित रूप में आवाज उठाने लगीं।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जाति एक औपचारिक राजनीतिक मुद्दा नहीं थी, लेकिन इसके प्रभावों को नकारा नहीं जा सकता। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने विशेष रूप से दलितों और वंचित वर्गों के सामाजिक-राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए आंदोलन चलाया और भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए राजनीतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया। यह पहला अवसर था जब जातियों को संस्थागत रूप से राजनीतिक भागीदारी प्रदान की गई।

स्वतंत्र भारत के संविधान ने जातिगत भेदभाव को अवैध घोषित किया, लेकिन साथ ही सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों को विशेष अधिकार और आरक्षण प्रदान किए गए। अनुसूचित जातियों (SC), अनुसूचित जनजातियों (ST) और बाद में अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) को सरकारी नौकरियों, शिक्षण संस्थानों और राजनीतिक संस्थाओं में आरक्षण दिया गया। इस आरक्षण व्यवस्था ने एक ओर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा दिया, वहीं दूसरी ओर यह धीरे-धीरे राजनीतिक साधन के रूप में उपयोग होने लगा।

1980 और 1990 के दशकों में जाति आधारित राजनीतिक आंदोलनों ने भारतीय राजनीति को एक नया मोड़ दिया। मंडल आयोग की सिफारिशों के आधार पर जब 1990 में केंद्र सरकार ने OBC वर्ग के लिए 27% आरक्षण की घोषणा की, तब यह निर्णय न केवल प्रशासनिक नीति के रूप में, बल्कि एक शक्तिशाली राजनीतिक घटना के रूप में देखा गया। इसके विरोध और समर्थन में व्यापक जन आंदोलनों ने यह सिद्ध कर दिया कि जाति अब केवल सामाजिक नहीं, बल्कि राजनीतिक चेतना का केंद्रबिंदु बन चुकी है।

इन घटनाओं ने जातिगत संगठनों और क्षेत्रीय दलों को बढ़ावा दिया, जिन्होंने विशेष जातीय समूहों के हितों की रक्षा का दावा करते हुए राजनीतिक ताकत हासिल की। इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीति में जाति का विकास एक क्रमिक प्रक्रिया रही है, जिसमें सामाजिक पहचान धीरे-धीरे राजनीतिक शक्ति में रूपांतरित होती गई।

5. जाति और चुनावी राजनीति

भारतीय चुनावी प्रक्रिया में जाति की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। यद्यपि भारतीय संविधान प्रत्येक नागरिक को समान मतदान अधिकार प्रदान करता है, लेकिन व्यावहारिक स्तर पर मतदाताओं का व्यवहार, प्रत्याशी चयन, दलगत रणनीतियाँ और गठबंधन संरचना जातिगत समीकरणों से अत्यधिक प्रभावित होते हैं। जाति राजनीति का वह धरातल बन गई है जिस पर चुनावी सफलता की रणनीति गढ़ी जाती है।

उत्तर भारत में जाति आधारित राजनीति विशेष रूप से प्रभावशाली रही है।

- **उत्तर प्रदेश** में समाजवादी पार्टी ने यादव और अन्य पिछड़े वर्गों को संगठित कर राजनीतिक सत्ता प्राप्त की, जबकि बहुजन समाज पार्टी ने दलित समुदाय को एकजुट कर 'बहुजन' राजनीति की स्थापना की। भाजपा ने इन दोनों दलों के जातिगत वर्चस्व को तोड़ने के लिए गैर-यादव ओबीसी और गैर-जाटव दलितों को संगठित करने की रणनीति अपनाई।
- **बिहार** में राष्ट्रीय जनता दल (RJD) ने यादव और मुस्लिम समुदायों के गठजोड़ पर अपनी रणनीति आधारित की। नीतीश कुमार के नेतृत्व में जनता दल (यू) ने कुर्मी जाति को राजनीतिक शक्ति का केंद्र बनाया। इन सभी दलों की चुनावी रणनीतियाँ पूरी तरह जातीय आधार पर तैयार की गईं।

दक्षिण भारत में जाति आधारित आंदोलनों की शुरुआत औपनिवेशिक काल में हुई थी, विशेषकर तमिलनाडु में:

- **द्रविड़ आंदोलन** ने ब्राह्मणवादी वर्चस्व के खिलाफ गैर-ब्राह्मण जातियों को एकजुट किया। द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (DMK) और उसके बाद ऑल इंडिया अन्ना डीएमके (AIADMK) ने इसी आंदोलन की राजनीति को आगे बढ़ाया।
- **कर्नाटक** में लिंगायत और वोक्कालिगा जैसी प्रभावशाली जातियों ने लंबे समय तक राज्य की राजनीति को प्रभावित किया।

महाराष्ट्र में मराठा समुदाय राज्य की सत्ता का प्रमुख भागीदार रहा है। छत्रपति शिवाजी के वंश की विरासत को राजनीतिक पूंजी के रूप में प्रस्तुत करते हुए अनेक नेता मराठा वोट बैंक को साधने में सफल रहे हैं। वहीं, दलितों के बीच डॉ. अंबेडकर की विचारधारा आज भी बहुजन राजनीति का मूल आधार बनी हुई है।

राजस्थान और गुजरात में जातिगत राजनीति ने भी क्षेत्रीय प्रभाव डाला है।

- **राजस्थान** में राजपूत, जाट, मेघवाल, गुर्जर, और मुस्लिम समुदायों की राजनीति में विशिष्ट भूमिका रही है।
- **गुजरात** में पाटीदार आंदोलन ने यह दिखाया कि सवर्ण समुदाय भी आरक्षण और पहचान के प्रश्न पर संगठित होकर राजनीतिक रूप से उभर सकते हैं।

चुनावों में जाति की भूमिका केवल प्रत्याशी चयन तक सीमित नहीं रहती, बल्कि घोषणापत्र, नीतिगत घोषणाओं, और राजनीतिक नारों तक जातीय अपील स्पष्ट दिखाई देती है। अनेक बार राजनीतिक दल जाति आधारित रैलियों, सम्मेलनों और जातीय प्रतीकों का प्रयोग करते हैं ताकि विशिष्ट समुदायों का समर्थन प्राप्त किया जा सके।

इससे स्पष्ट है कि जाति अब केवल सामाजिक पहचान नहीं, बल्कि राजनीतिक संगठन, संसाधनों की माँग और सत्ता-साझेदारी का साधन बन चुकी है। जातिगत राजनीति ने भारत की चुनावी प्रणाली को गहराई से प्रभावित किया है और यह प्रवृत्ति आज भी कायम है, भले ही इसके स्वरूप बदलते रहें।

6. राजनीतिक दलों की जाति आधारित रणनीतियाँ

भारतीय लोकतंत्र में चुनावी सफलता किसी एक सिद्धांत या विचारधारा की देन नहीं रही है, बल्कि वह विभिन्न सामाजिक समूहों, विशेषकर जातियों के समर्थन पर निर्भर रही है। इसी कारण से अधिकांश राजनीतिक दलों ने समय के साथ "सोशल इंजीनियरिंग" अर्थात जातियों के समीकरणों को साधकर सत्ता प्राप्ति की रणनीति को अपनाया है। यह रणनीति केवल चुनावी गठबंधनों या उम्मीदवार चयन तक सीमित नहीं रहती, बल्कि घोषणापत्रों, भाषणों, आरक्षण की मांगों, और जातीय नेताओं के पोषण तक फैली हुई होती है।

6.1. बहुजन समाज पार्टी (BSP): बहुजन समाज पार्टी ने कांशीराम और बाद में मायावती के नेतृत्व में "बहुजन" अर्थात दलित, आदिवासी, पिछड़े और मुस्लिम वर्गों को एक राजनीतिक मंच पर संगठित करने का प्रयास किया। यह "बहुजन बनाम सवर्ण" की राजनीति थी, जिसने दलित समुदाय को राजनीतिक आत्मविश्वास प्रदान किया। बाद में BSP ने "सर्वजन समाज" की नीति अपनाकर ब्राह्मण और अन्य उच्च जातियों को भी जोड़ने का प्रयास किया।

6.2. समाजवादी पार्टी (SP): सपा की राजनीति शुरू से ही ओबीसी, विशेषकर यादव समुदाय और मुस्लिम मतदाताओं के गठजोड़ पर आधारित रही है। मुलायम सिंह यादव और बाद में अखिलेश यादव के नेतृत्व में यह रणनीति पार्टी की रीढ़ बनी रही। सपा ने स्वयं को पिछड़ों और मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया, जिससे उसे बड़े जनसमूह का समर्थन प्राप्त हुआ।

6.3. भारतीय जनता पार्टी (BJP): भाजपा ने शुरुआती वर्षों में शहरी मध्यवर्ग और सवर्ण हिंदू मतदाताओं के बीच समर्थन प्राप्त किया, किंतु 2014 के बाद पार्टी ने "सामाजिक समावेशन" की रणनीति के अंतर्गत गैर-यादव ओबीसी, गैर-जाटव दलितों और

आर्थिक रूप से कमजोर सवर्णों को अपने पाले में लाने का प्रयास किया। पार्टी ने 'सबका साथ, सबका विकास' का नारा देते हुए विभिन्न जातियों को एक राष्ट्रवादी एजेंडे के तहत संगठित किया, जिससे उसका जाति आधारित समीकरण अत्यंत व्यापक हो गया।

6.4. राष्ट्रीय जनता दल (RJD): बिहार में लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में RJD ने यादव और मुस्लिम समुदायों का मजबूत गठजोड़ तैयार किया। उन्होंने इसे 'MY समीकरण' (Muslim-Yadav) का नाम दिया और 'सामाजिक न्याय' की अवधारणा के साथ पिछड़ों की राजनीति को केंद्र में रखा।

6.5. जनता दल (यूनाइटेड) - JDU: नीतीश कुमार ने RJD के जातीय वर्चस्व को चुनौती देने के लिए गैर-यादव पिछड़ों और महिलाओं पर विशेष ध्यान केंद्रित किया। उन्होंने "सात निश्चय" योजना जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से विकास और सामाजिक समावेशन की राजनीति को जातीय ध्रुवीकरण के विरुद्ध रखा।

6.6. कांग्रेस पार्टी: कांग्रेस ऐतिहासिक रूप से एक समावेशी दल रही है, जिसने सभी जातियों के साथ संबंध बनाए रखने की कोशिश की। किंतु मंडल युग के बाद उसका जातीय आधार कमजोर पड़ गया। हाल के वर्षों में पार्टी ने SC, ST और OBC वर्गों को पुनः आकर्षित करने के लिए "न्याय योजना", दलित-आदिवासी सम्मेलन आदि के माध्यम से रणनीतियाँ अपनाईं।

इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि जातीय संरचना को ध्यान में रखते हुए राजनीतिक दल न केवल गठबंधन बनाते हैं, बल्कि दीर्घकालिक रणनीति भी तैयार करते हैं। यह "सोशल इंजीनियरिंग" भारतीय राजनीति में सत्ता प्राप्ति का एक प्रभावी और कभी-कभी अनिवार्य उपकरण बन चुकी है।

7. जातिगत आरक्षण और राजनीति

जातिगत आरक्षण का विषय भारतीय राजनीति में एक ऐसा मुद्दा रहा है जो सामाजिक न्याय और सत्ता की राजनीति — दोनों के केंद्र में रहा है। संविधान निर्माताओं ने आरक्षण को एक अस्थायी उपाय के रूप में देखा था ताकि वंचित वर्गों को मुख्यधारा में लाया जा सके। किंतु व्यावहारिक रूप से यह व्यवस्था न केवल स्थायी होती चली गई, बल्कि राजनीतिक विमर्श का स्थायी तत्व भी बन गई।

1. **मंडल आयोग और OBC आरक्षण:** 1990 में तत्कालीन प्रधानमंत्री वी. पी. सिंह द्वारा मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करते हुए पिछड़े वर्गों को 27% आरक्षण देने की घोषणा ने भारतीय राजनीति में अभूतपूर्व उथल-पुथल मचाई। इसके विरोध में देश के अनेक हिस्सों में आंदोलन हुए, खासकर शहरी सवर्ण युवाओं द्वारा आत्मदाह जैसी घटनाएँ भी सामने आईं। वहीं दूसरी ओर, इस निर्णय ने पिछड़े वर्गों के भीतर एक नई राजनीतिक चेतना का संचार किया, जिससे मंडल के बाद की राजनीति पूरी तरह से जातिगत ध्रुवीकरण पर केंद्रित हो गई। इसने OBC नेताओं के उभार को भी जन्म दिया और सपा, राजद, जदयू जैसे दलों को राजनीतिक मंच प्रदान किया।

2. **अनुसूचित जाति और जनजातियों का आरक्षण:** SC और ST वर्गों के लिए पहले से ही आरक्षण की व्यवस्था थी, परंतु मंडल युग के बाद इन वर्गों के भी राजनीतिककरण में तीव्रता आई। दलित समुदायों के बीच राजनीतिक चेतना बढ़ी और उन्होंने अपने नेताओं को सत्ता तक पहुँचाया। यह आरक्षण व्यवस्था अब न केवल सामाजिक सहायता का माध्यम रही, बल्कि राजनीतिक अधिकार और स्वाभिमान का प्रतीक बन गई।

3. **सवर्ण वर्गों में असंतोष और EWS आरक्षण:** आरक्षण व्यवस्था से उपजे सामाजिक और राजनीतिक तनावों के परिणामस्वरूप 2019 में केंद्र सरकार ने आर्थिक रूप से कमजोर सामान्य वर्ग (EWS) के लिए 10% आरक्षण की घोषणा की। यह निर्णय एक ओर समाज में संतुलन स्थापित करने का प्रयास था, वहीं दूसरी ओर इसे भाजपा द्वारा सवर्ण वोट बैंक को साधने की रणनीति के रूप में भी देखा गया। यह जातिगत राजनीति का एक नया विस्तार था, जो बताता है कि आरक्षण अब केवल सामाजिक न्याय का साधन नहीं, बल्कि सत्ता की राजनीति का एक प्रभावशाली हथियार भी बन चुका है।

4. **आरक्षण पर क्षेत्रीय आंदोलन:** राजस्थान में गुर्जर आंदोलन, गुजरात में पाटीदार आंदोलन, हरियाणा में जाट आंदोलन और महाराष्ट्र में मराठा आंदोलन — सभी इस ओर संकेत करते हैं कि जातियाँ अब अपने लिए आरक्षण को राजनीतिक और संवैधानिक अधिकार मानने लगी हैं। ये आंदोलन न केवल सामाजिक असंतोष को दर्शाते हैं, बल्कि इस बात की भी पुष्टि करते हैं कि आरक्षण अब सत्ता भागीदारी की मांग का प्रतीक बन चुका है।

निष्कर्षतः, जातिगत आरक्षण अब एक सामाजिक नीति भर नहीं रहा, बल्कि यह भारत की राजनीतिक संरचना और चुनावी रणनीतियों का अभिन्न हिस्सा बन चुका है। यह राजनीतिक दलों के लिए समर्थन प्राप्त करने का माध्यम बन गया है और जातीय समुदायों के लिए सशक्तिकरण का मार्ग। किंतु यह भी स्पष्ट है कि जब तक आरक्षण का उपयोग केवल राजनीतिक लाभ के लिए किया जाएगा, तब तक सामाजिक समरसता और वास्तविक न्याय का लक्ष्य अधूरा रह जाएगा।

8. जातिवाद और लोकतंत्र के मूल्य

भारतीय लोकतंत्र की नींव समानता, धर्मनिरपेक्षता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय जैसे संवैधानिक मूल्यों पर टिकी हुई है। इन मूल्यों का उद्देश्य एक ऐसे समाज की स्थापना करना है, जहाँ प्रत्येक नागरिक को बिना किसी जाति, धर्म या वर्ग के भेदभाव के समान अधिकार और अवसर प्राप्त हों। किंतु जब लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में जातिवाद गहराई से प्रवेश करता है, तब यह मूल्य अपने वास्तविक अर्थ खोने लगते हैं। जातिवादी राजनीति का सबसे बड़ा प्रभाव यह होता है कि वह मतदाताओं को सांप्रदायिक और जातिगत पहचान के आधार पर विभाजित करती है। जब मतदाता नीतियों, विकास कार्यों या शासन की गुणवत्ता के बजाय जातीय संबंधों के आधार पर निर्णय लेते हैं, तो लोकतंत्र की आत्मा — तर्कसंगत चुनाव और जवाबदेही — को क्षति पहुँचती है। यही वह स्थिति है जिसे अक्सर 'वोट बैंक राजनीति' कहा जाता है, जहाँ राजनीतिक दल जातीय समूहों को केवल संख्या बल के रूप में देखते हैं और उन्हें लुभाने के लिए सांकेतिक वादों, आरक्षण की घोषणाओं या जातीय प्रतीकों का उपयोग करते हैं। यह प्रवृत्ति लोकतंत्र को प्रतिनिधित्व का पर्याय बनाकर सीमित कर देती है, जहाँ प्रतिनिधि अपनी जाति के प्रतिनिधि के रूप में काम करने लगते हैं, न कि क्षेत्र या राष्ट्र के। इससे निर्णय लेने की प्रक्रिया में निष्पक्षता कम होती है और जातिगत पूर्वाग्रह नीति निर्माण को प्रभावित करते हैं। इसका एक बड़ा प्रभाव यह भी होता है कि प्रशासनिक निर्णय भी जातीय संतुलन को ध्यान में रखकर किए जाते हैं, जिससे योग्यता और दक्षता गौण हो जाती है।

जातिवाद का एक और गंभीर प्रभाव है राष्ट्रीय एकता पर खतरा। जब जातियों को एक-दूसरे के विरोध में संगठित किया जाता है, तो सामाजिक संघर्ष, असंतोष और हिंसा की संभावना बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए, आरक्षण विरोधी आंदोलनों, जातीय दंगों और जाति आधारित छात्र संघों की आक्रामक राजनीति लोकतंत्र के सौहार्द्र और समरसता के सिद्धांतों को कमजोर करती है। हालाँकि यह भी सत्य है कि जातिवादी राजनीति ने हाशिए पर पड़े वर्गों — जैसे दलित, आदिवासी, और पिछड़ी जातियों — को राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सशक्तिकरण का मार्ग प्रदान किया है। किंतु जब यह प्रतिनिधित्व केवल जातीय पहचान तक सीमित रह जाता है और लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व से कट जाता है, तब यह लोकतंत्र को सशक्त नहीं, बल्कि संकुचित बनाता है।

अतः यह आवश्यक है कि जाति आधारित राजनीतिक चेतना को सामाजिक न्याय और समान अवसरों की ओर उन्मुख किया जाए, न कि केवल सत्ता प्राप्ति का साधन बनने दिया जाए। जब तक लोकतंत्र में नीति, प्रदर्शन, और जवाबदेही को प्राथमिकता नहीं दी जाएगी, तब तक जातिवादी राजनीति लोकतंत्र की आत्मा को निरंतर क्षीण करती र रहेगी।

9. जाति की भूमिका का वर्तमान परिदृश्य

21वीं सदी में जब भारत वैश्वीकरण, डिजिटलीकरण, शहरीकरण और शिक्षा के क्षेत्र में तीव्र गति से प्रगति कर रहा है, तब यह अपेक्षा की जाती थी कि जाति की भूमिका राजनीति में कम हो जाएगी। हालांकि कुछ हद तक यह परिवर्तन देखने को मिला है, लेकिन जाति आज भी भारतीय राजनीति में एक 'अदृश्य लेकिन सक्रिय' कारक बनी हुई है। डिजिटल युग और शहरीकरण ने नई पीढ़ी के युवाओं के बीच राजनीतिक चेतना को व्यापक किया है। सोशल मीडिया, ऑनलाइन डिबेट, और सशक्त सिविल सोसाइटी के माध्यम से युवाओं का ध्यान भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे मुद्दों पर केंद्रित हो रहा है। हाल के चुनावों में कई बार यह देखा गया है कि जाति आधारित अपीलों को मतदाता पूरी तरह से नहीं स्वीकारते और प्रदर्शन तथा नीति को महत्व देते हैं। लेकिन इसके समानांतर, जाति आधारित संगठन, आरक्षण की माँग, और क्षेत्रीय आंदोलनों की निरंतरता यह दर्शाती है कि जाति अभी भी सामाजिक

और राजनीतिक दोनों स्तरों पर एक प्रभावशाली शक्ति है। पाटीदार, मराठा, जाट, गुर्जर जैसे समुदायों के आरक्षण आंदोलनों ने यह साबित किया है कि आधुनिकता और प्रौद्योगिकी के युग में भी जातीय अस्मिता और हित एक निर्णायक राजनीतिक विषय हैं।
राजनीतिक दलों की रणनीतियाँ भी इस तथ्य को स्वीकार करती हैं। वे अपने घोषणापत्रों में जाति आधारित समूहों को लक्षित करती हैं, जातीय सम्मेलनों का आयोजन करती हैं और टिकट वितरण से लेकर नीति निर्धारण तक जातीय संतुलन साधने का प्रयास करती हैं। कई बार यह जातीय समीकरण आंतरिक दलगत राजनीति और गठबंधन की राजनीति को भी प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त, शैक्षणिक संस्थानों, नौकरियों और स्थानीय निकायों में भी जातिगत प्रतिनिधित्व एक जीवंत मुद्दा बना हुआ है। छात्र संगठन, पंचायत चुनाव, और विश्वविद्यालय की राजनीति में भी जाति की सक्रिय भूमिका देखी जा सकती है। हालिया चुनावों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखी है कि यद्यपि मतदाता अब विकास, रोजगार और सुरक्षा जैसे मुद्दों पर भी ध्यान देते हैं, लेकिन जातीय पहचान और सामाजिक समूहबद्धता अब भी उनके निर्णयों को प्रभावित करती है। इस प्रकार जाति एक 'सॉफ्ट फैक्टर' बनकर रह गई है — जो स्पष्ट रूप से प्रचारित नहीं होती, लेकिन अंतर्निहित रूप से मतदान व्यवहार को निर्देशित करती है।
निष्कर्षतः, जाति का प्रभाव भारतीय राजनीति में समाप्त नहीं हुआ है, बल्कि उसने समय के साथ अपना स्वरूप बदल लिया है। अब वह पहले जैसी सीधी टकराव की नीति से हटकर संगठित रणनीति और सांकेतिक राजनीति के रूप में प्रकट हो रही है। इसके प्रति सजग रहकर यदि राजनीति को नीति-आधारित और उत्तरदायी बनाया जाए, तो भारत जाति और लोकतंत्र के द्वंद्व को संतुलित रूप से साध सकता है।

10. निष्कर्ष (Conclusion)

भारतीय राजनीति में जाति का प्रभाव केवल एक सामाजिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि एक ऐतिहासिक रूप से निर्मित और संरचनात्मक रूप से पोषित राजनीतिक यथार्थ है। यह प्रभाव भारत की विविधतापूर्ण सामाजिक संरचना, औपनिवेशिक शासन की नीतियों, और स्वतंत्रता के बाद अपनाई गई आरक्षण एवं प्रतिनिधित्व संबंधी नीतियों से उत्पन्न हुआ। लोकतंत्र, जिसका मूल उद्देश्य सभी नागरिकों को समान अधिकार, प्रतिनिधित्व और अवसर प्रदान करना है, जातिगत विषमताओं को समाप्त करने का उपकरण होना चाहिए था; लेकिन व्यावहारिक राजनीति ने इसे जातिगत हितों की प्रतिस्पर्धा और वोट बैंक की रणनीति में बदल दिया। जाति एक ओर वंचित और शोषित समुदायों के लिए सशक्तिकरण का माध्यम रही है। अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों को आरक्षण और राजनीतिक प्रतिनिधित्व ने सामाजिक न्याय की दिशा में अग्रसर होने का अवसर दिया है। यह प्रक्रिया लोकतंत्र के उस पहलू को मजबूत करती है जिसमें सत्ता का विकेंद्रीकरण और समावेशन निहित है। किन्तु दूसरी ओर, जाति का राजनीतिकरण अक्सर विकास, नीति और सुशासन जैसे मूलभूत लोकतांत्रिक उद्देश्यों को प्रभावित करता है। जब राजनीतिक संवाद जातीय अपीलों और पहचान पर आधारित हो जाता है, तो व्यापक राष्ट्रीय हित गौण हो जाते हैं। मतदाता यदि केवल जातीय पहचान के आधार पर निर्णय लेते हैं, तो प्रतिनिधियों की योग्यता, पारदर्शिता और जवाबदेही का स्थान जातीय निष्ठा ले लेती है। यह प्रवृत्ति लोकतंत्र के मूल मूल्य — समानता, धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्र सर्वोपरिता — के लिए एक चुनौती बन जाती है।

आज जब भारत डिजिटल युग, वैश्वीकरण, और शहरीकरण के दौर से गुजर रहा है, तब यह आवश्यक है कि राजनीतिक संस्कृति में एक सांस्थानिक बदलाव लाया जाए। मतदाता समुदाय को यह समझने की आवश्यकता है कि दीर्घकालिक सामाजिक और आर्थिक उन्नति केवल प्रतिनिधित्व से नहीं, बल्कि प्रभावी नीतियों और उत्तरदायी शासन से ही संभव है। जातिगत अस्मिता के साथ-साथ नागरिक चेतना, संवैधानिक मूल्यों और समावेशी विकास को भी प्राथमिकता देना आवश्यक है। राजनीतिक दलों को चाहिए कि वे जातिगत ध्रुवीकरण की रणनीति से हटकर समावेशी नीति निर्माण, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सामाजिक समरसता जैसे विषयों को चुनावी विमर्श का हिस्सा बनाएं। उन्हें यह समझना होगा कि भारत का युवा मतदाता अब जाति की राजनीति से आगे बढ़कर विकासोन्मुख और विचार आधारित राजनीति की ओर आकृष्ट हो रहा है।

निष्कर्षतः, भारतीय राजनीति में जाति का प्रभाव एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसे पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता, लेकिन उसे एक स्वस्थ लोकतंत्र के भीतर नियंत्रित, विवेकशील और सामाजिक न्यायोन्मुखी बनाना अनिवार्य है। जब तक राजनीति

में जाति केवल पहचान नहीं बल्कि सशक्तिकरण और उत्तरदायित्व का आधार बनेगी, तभी भारतीय लोकतंत्र अपनी पूर्ण परिपक्वता की ओर बढ़ सकेगा।

11. संदर्भ सूची (References)

1. अंबेडकर, भीमराव. (1945). *जाति का उच्छेद*. मुम्बई: थॉट्स पब्लिकेशन. पृ. 12–45.
2. ओमवेट, गेल. (2004). *दलित आंदोलन और भारतीय राजनीति*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 76–104.
3. यादव, योगेंद्र. (2000). "जाति, मतदाता और चुनावी राजनीति," *समाज विज्ञान शोध पत्रिका*, खंड 34, अंक 2, पृ. 45–67.
4. श्रीवास्तव, एस. के. (2017). *भारतीय राजनीति में जाति का प्रभाव*. वाराणसी: भारत बुक डिपो. पृ. 98–135.
5. अंजनी कुमार. (2021). *भारत में आरक्षण व्यवस्था और राजनीतिक रणनीति*. दिल्ली: यूनिटी पब्लिकेशन. पृ. 21–87.
6. Jaffrelot, Christophe. (2003). *India's Silent Revolution: The Rise of the Lower Castes in North India*. New Delhi: Permanent Black. Pages: 65–112, 147–189.
7. Hasan, Zoya. (2000). *Politics and the State in India*. New Delhi: Sage Publications. Pages: 88–124.
8. Weiner, Myron. (2001). "The Struggle for Equality: Caste in Indian Politics," in *The Politics of Social Exclusion in India*. New Delhi: Orient Blackswan. Pages: 32–59.
9. Chandra, Kanchan. (2004). *Why Ethnic Parties Succeed: Patronage and Ethnic Head Counts in India*. Cambridge University Press. Pages: 40–95.
10. Election Commission of India. (2024). *Statistical Reports on General Elections*. New Delhi: Government of India. https://eci.gov.in
11. CSDS–Lokniti. (2019). *National Election Study (NES) – Caste and Voting Behavior Data Report*. New Delhi: Centre for the Study of Developing Societies.
12. Government of India. (1980). *Report of the Mandal Commission*. New Delhi: Ministry of Social Justice and Empowerment. Vol. 1. Pages: 1–243.
13. Austin, Granville. (1999). *Working a Democratic Constitution: The Indian Experience*. New Delhi: Oxford University Press. Pages: 113–178.
14. Basu, D. D. (2020). *Introduction to the Constitution of India* (25th ed.). Gurgaon: LexisNexis. Pages: 154–196, 264–285.
15. Thakur, Ramesh. (1995). *The Government and Politics of India*. Macmillan. Pages: 72–103.